उदीयमान राष्ट्रदृष्टि

योगक्षेम, कलकत्ता, की मासिक सभा में 4 दिसंबर, 1983 को दिया गया श्री सीताराम गोयल का भाषण

डॉ. धर, श्री घोष तथा मित्रगण,

श्री घोष ने मेरे बारे में जो कुछ कहा उसके कारण मेरी घबराहट कुछ और बढ़ गई है। घबराहट मुझ में पहले से ही थी। कारण, मुझे भाषण देने का बिल्कुल अभ्यास नहीं है। यह मैं नहीं जानता कि मैं एक अच्छा लेखक हूँ या नहीं। किन्तु इतना मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि मुझे बोलना नहीं आता। अतएव मैं कुछ अटपटा कह जाऊँ, अथवा अपनी बात भली भांति न कह पाऊँ अथवा असंगत हो उठूँ तो आप लोग कृपया मुझे क्षमा करेंगे।

सम्यक तो यही होता कि आज के वक्ता हमारे मित्र श्री रामस्वरूप होते। मैंने जो कुछ भी लिखा है, और आज मुझे जो कुछ भी कहना है, वह सब मैंने उन्हीं से सीखा है। वे मुझे बीज रूप में विचार देते रहते हैं। वे ही बीज मेरे छोटे-छोटे लेखों में अंकुरित होते रहते हैं, लम्बे-लम्बे लेखों में पल्लवित हो उठते हैं। मुझे दृष्टि भी उन्हीं से प्राप्त होती है। मेरा अपना कहने को यदि कुछ है तो वह है मेरी भाषा। यदि भाषा भी उन्हीं की होती तो बहुत अच्छा होता। मेरी अपनी भाषा प्रायः प्रखर हो उठती है। कुछ लोगों को वह पसंद नहीं आती। उनकी भाषा का स्वर सुदृढ़ होने के साथ-साथ सौम्य रहता है। वैसी भाषा का प्रयोग मुझसे कभी नहीं बन पड़ा। मुझे आशा है कि इस सभा के समापन से पूर्व वे अपनी भाषा में कुछ कहेंगे।

आज का विषय है 'उदीयमान राष्ट्रदृष्टि'। मेरे लिए यह धृष्टता ही कही जाएगी कि मैं बंगाल के श्रोतागण के सामने, विशेषतया कलकत्ता महानगर के श्रोतागण के सामने, राष्ट्रदृष्टि पर व्याख्यान दूँ। राष्ट्रदृष्टि का

जो सर्वांग-संपूर्ण दर्शन हमारे सामने है वह हमको इस शती के प्रथम दशक में बंगाल से ही प्राप्त हुआ था, कलकत्ता महानगर में ही मिला था। बंकिमचन्द्र, स्वामी विवेकानंद तथा श्री अरविन्द की रचनाएँ पढ़ कर और रवीन्द्रनाथ के गान सुनकर ही हम समझ सकते हैं कि राष्ट्रदृष्टि का रूप क्या था और फिर से अनुप्राणित तथा अनुमोदित होने पर वह रूप क्या होगा। इन महापुरूषों ने जो कुछ लिखा है, जो कुछ व्याख्या की है, और अपने जीवन में जो कुछ चरितार्थ किया है, उसमें मुझे कुछ नहीं जोड़ना। मैं तो एक अकिंचन टीकाकार के नाते केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि आज की वस्तुस्थिति में इन महापुरुषों की दृष्टि का विस्तार किस प्रकार किया जाना चाहिए, उस दृष्टि का पुनरुत्थान कैसा होना चाहिए।

जिस राष्ट्रदृष्टि की व्याख्या इन महापुरुषों ने की थी उसकी पराकाष्ठा, उसका पूर्ण विस्तार और उसका पूर्ण परिचय हमें स्वदेशी आंदोलन के समय प्राप्त हुआ था। जिन साम्राज्यवादी शक्तियों ने बाद में बंगाल का विभाजन किया उन्हीं ने उस समय भी बंगाल के विभाजन का प्रयास किया था। इस्लामी साम्राज्यवाद अथवा उस साम्राज्यवाद के अवशेषों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ मिलकर उस बंगभूमि को विभाजित करने का प्रयास किया था जिसे भगवान ने अविभाज्य बनाया है। उस समय उन शक्तियों का वह षड्यंत्र विफल हुआ था। उन शक्तियों का वह खेल उस दिन इसीलिए बिगड़ गया था कि उस समय हमारी राष्ट्रदृष्टि सचेत थी, सर्वथा सुदृढ़ थी। स्वदेशी आंदोलन ने ही वस्तुतः हमारे स्वाधीनता संग्राम का सूत्रपात किया था। उस आंदोलन के पूर्व कुछ गिने-चुने महानुभाव एक साथ बैठकर कई-एक प्रस्ताव पास कर लेते थे। इससे अधिक वे

लोग कुछ नहीं कर पाते थे। स्वदेशी आंदोलन ने ही हमारे स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में सर्वप्रथम हमारे जनगण को जगाया था। उस जागरण की गूंज सारे भारतवर्ष में दूर-दूर तक सुनी गई थी। महाराष्ट्र तथा पंजाब में वह गूंज विशेषतया सुनी गई थी। स्वदेशी आंदोलन द्वारा दिए गए मन्त्र भी सारे देश ने सुने थे - स्वदेशी का मन्त्र, स्वराज्य का मन्त्र और वन्देमातरम् का वह मन्त्र जिसमें एक जागृत राष्ट्र की सारी आकांक्षाएँ निहित थीं। राष्ट्रदृष्टि की यह छवि सर्वांग-सम्पूर्ण थी। यह छवि कुछ और हो भी नहीं सकती थी।

किन्तु दुर्भाग्यवश देश के परवर्ती नेताओं ने, स्वाधीनता-संग्राम के परवर्ती पर्व में, इस दृष्टि को धुंधला कर डाला। कई एक अन्य दृष्टियों की आड़ में, यह दृष्टि ओझल हो गई, इस दृष्टि की प्रखरता लुप्त हो गई। परिणामस्वरूप देश को विभाजन की विभीषिका झेलनी पड़ी। हम सब भली-भांति जानते हैं कि घटनाचक्र कैसे चला और देश को कैसा दुर्दिन देखना पड़ा। उस विभीषिका का दुःख बंगाल ने सबसे अधिक भोगा है। बंगाल के शरीर में जो घाव उस समय लगे थे वे अब नासूर बन चुके हैं। इस प्रसंग में मैं अधिक नहीं कहना चाहता। आप लोगों से कुछ भी छुपा नहीं है। मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूँ, और बड़े दुःख के साथ कह रहा हूँ, कि जिस बंगाल ने राष्ट्रदृष्टि के विलोप के कारण इतना सब सहा है वही बंगाल आज राष्ट्रदृष्टि की सबसे अधिक अवहेलना कर रहा है। राष्ट्रदृष्टि की ऐसी अवहेलना इस देश में अन्यत्र कहीं नहीं हुई। अतएव बंगाल के लिए यही उपादेय है कि वह राष्ट्रदृष्टि को फिर से अनुप्राणित करे, फिर से अनुमोदित करे, फिर से प्रतिष्ठित करे। यही एक मार्ग है जिस

पर चलकर बंगाल एक बार फिर भारतवर्ष का नेतृत्व प्राप्त कर सकता है – वह नेतृत्व जो एक दिन उसका था और जो उसने आगे चलकर खो दिया।

आज बंगाल में यह भावना व्याप्त है कि शेष भारत उसकी अवहेलना कर रहा है। किन्तु इस में शेष भारत का कोई दोष नहीं। दोष बंगाल का ही है। बंगाल ने ही अपनी थाती की अवहेलना की है। बंगाल ने ही उस राष्ट्रदृष्टि को भुलाया है जो उसने एक समय सारे भारत को दी थी और जिसके बल पर बंगाल सारे देश का नेता बना था। इस विषय में मैं विस्तार से बोलना नहीं चाहता। आप सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि आज बंगाल में क्या हो रहा है। आज बंगाल में उसी के महापुरुषों द्वारा प्रदत्त दृष्टि की ही नहीं, उन महापुरुषों के चरित्र की भी छीछालेदर की जा रही है। मैं बंगाल में प्रकाशित समाचार-पत्रों में चलने वाली चर्चा पढ़ता रहता हूँ, बंगला भाषा में छपे उपन्यास पढ़ता रहता हूँ तथा अन्य साहित्य भी देखता रहता हूँ। मुझे यह सब पढ़कर पीड़ा का अनुभव होता है। मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न उठता है कि क्या यह वही बंगाल है जिसने एक समय सारे भारत को इतना ऊंचा उठाया था। इस भूमि में इस प्रकार की कुत्सित चेष्टाएँ किस प्रकार सम्भव हुईं?

वह राष्ट्रदृष्टि क्या थी जिसे हमने बंगाल के महापुरुषों से पाया था और जिससे प्रेरणा पाकर भारतवर्ष में एक महान स्वाधीनता-संग्राम का सूत्रपात हुआ था? उन क्रान्तिकारियों का स्मरण कीजिए जिनको उस समय भारतवर्ष ने जन्म दिया था। वे महाप्राण मानव थे जो हाथ में

श्रीमद्भगवद्गीता लेकर और कण्ठ से वन्देमातरम् का निनाद करते हुए फांसी के तख़्तों पर झूल गए थे। आजकल भी कुछ लोग क्रान्तिकारी होने का दम भरते हैं। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि आजकल के बहुत से क्रान्तिकारी क्रूर अपराधियों से अधिक कुछ नहीं। पूर्वकाल के क्रान्तिकारी एक अन्य कोटि के क्रान्तिकारी थे। वे अन्य कोटि के इसीलिए थे कि उनकी दृष्टि अन्य प्रकार की थी।

वह दृष्टि क्या थी? एक प्रकार से देखा जाए तो वह दृष्टि कोई नई दृष्टि नहीं थी। जिस सनातन वैदिक दृष्टि का विस्तार उपनिषद्, जैनागम, त्रिपिटक, रामायण, महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र और परवर्ती सिद्धों और सन्तों की वाणी में मिलता है, उसी का पुनरोच्चारण आधुनिक भाषा में तथा आधुनिक प्रसंग के अनुकूल किया गया था। उस दृष्टि का प्रचार करने वाले महापुरुष हमारे इतिहास में अनेकानेक हुए हैं।

उस दृष्टि का प्रथम आयाम था कि भारतवर्ष सनातन धर्म की भूमि है। यही उस दृष्टि का आदिम तथा सर्वोत्तम स्वर था। उत्तरपाड़ा में दिए गए अपने भाषण में श्री अरविन्द ने कहा था कि सनातन धर्म के उत्थान के साथ ही भारतवर्ष का उत्थान होता है, सनातन धर्म के पतन के साथ ही भारतवर्ष का पतन होता है, और यदि यह सम्भव है कि सनातन धर्म का विलोप हो जाए तो भारतवर्ष भी विनष्ट हो जाएगा। सनातन धर्म के विषय में चर्चा करना इस समय समीचीन नहीं है। मै केवल इतना ही कहूँगा कि सनातन धर्म एक सहज धर्म है, मानवप्रकृति के विकासक्रम के अनुकूल है और मानवप्राणी की चरम साधना को चरितार्थ करने वाला है। वह

इस्लाम और ईसाइयत की नाईं एक मनगढ़ंत ढकोसला नहीं है। न ही वह ऐसे कृत्रिम मान्यताओं का संग्रह (set of mechanical beliefs) है जिनको मनुष्य की बाह्य मानस द्वारा गढ़ कर उसके अनुयाइयों के ऊपर लाद दिया गया हो।

उस दृष्टि का दूसरा आयाम था एक विराट और वैविध्य-सम्पन्न संस्कृति का दिग्दर्शन। आधार तथा अधिकार के अनुरूप हमारे समाज के विविध समुदायों ने, हमारे देश के विविध अंचलों ने अपनी-अपनी संस्कृति का विकास किया है, अपनी-अपनी ललित-कलाओं को निखारा है, अपने-अपने साहित्य का सृजन किया है। हमारा साहित्य विराट है- अध्यात्म-विषयक साहित्य, इहलोक से सम्बंधित साहित्य, विज्ञान सम्मत साहित्य। इस साहित्य का सृजन देश के विविध अंचलों में हुआ है, विविध प्रकार के सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेशों में हुआ है। इसी प्रकार हमारी ललित-कलाएँ, हमारा स्थापत्य, हमारा मूर्तिशिल्प तथा हमारा संगीत भी विशालकाय है। कुल मिलाकर ये सारी ललित-कलाएँ, यह समस्त साहित्य एक विपुल सम्पदा है। किन्तु इस समस्त सृजन के पीछे जो प्रेरणा है वह सनातन धर्म की ही प्रेरणा है। राष्ट्रदृष्टि का यह दूसरा आयाम था।

उस दृष्टि का तीसरा आयाम था वह महामहिम समाज जो अधुना हिन्दू समाज कहलाता है। इस समाज का संगठन अध्यात्म के आधार पर हुआ है। सनातन धर्म के धरातल पर खड़ा है यह समाज। इस समाज में सनातन धर्म द्वारा सृष्ट संस्कृति का समावेश है। इस समाज को वर्णाश्रम

के रूप में सँवारा गया है। आज हम वर्णाश्रम की वर्णना अंग्रेजी के एक भोंडे शब्द-समवाय द्वारा करते हैं। हम उसे कास्ट-सिस्टम कह कर पुकारते हैं। आज सब लोग कास्ट-सिस्टम को कोसने में व्यस्त हैं। किन्तु वर्णाश्रम ही ने हमारी उस बहुविध समाजव्यवस्था को एक ऐसे सांचे में ढाला है जो अनेक विडम्बनाएँ झेल कर और दीर्घकाल तक अनेक विदेशी आक्रमणों के आघात सहकर, आज तक प्राणवान् है, आज तक प्रगति-परायण है। आधुनिक युग के हमारे सारे महापुरुषों ने वर्णाश्रम की सराहना की है – महर्षि दयानन्द ने, बंकिमचन्द्र ने, स्वामी विवेकानन्द ने, लोकमान्य तिलक ने, महामना मदन मोहन मालवीय ने, महात्मा गांधी ने। इन सब महापुरुषों ने एक स्वर से यह कहा है कि वर्णाश्रम ने ही हिन्दू समाज को विनाश से बचा लिया। ईसायत, इस्लाम तथा कम्युनिज्म ने भारतवर्ष के बाहर अनेक समाज-व्यवस्थाओं का विनाश किया है। भारतवर्ष में ये दस्युदल वैसा नहीं कर पाए। यह वर्णाश्रम का ही प्रताप है। राष्ट्रदृष्टि का यह तीसरा आयाम था।

उस दृष्टि का चौथा आयाम यह था कि इस महामहिम समाज का, इस हिन्दू समाज का एक अपना इतिहास रहा है – किस प्रकार इस समाज का उदय हुआ, किस प्रकार इस समाज का विकास हुआ, किस प्रकार इस समाज ने एक ऐसे अध्यात्म की साधना की जो अनेक प्राचीन देशों में साधे गए अध्यात्म के साथ समरस था – यथा ग्रीस, रोम, चीन, मिस्र, ईरान। उस दृष्टि ने हमें दिखलाया कि भारतवर्ष का इतिहास वस्तुतः हिन्दू समाज का इतिहास है, हिन्दू संस्कृति का इतिहास है, हिन्दू अध्यात्म-साधना का इतिहास है। वह इतिहास बाह्य आक्रमणकारियों का इतिहास

बिल्कुल नहीं है, जैसा कि हमें आजकल पढ़ाया जा रहा है। उस दृष्टि का यह चौथा आयाम था।

उस दृष्टि का पांचवा आयाम यह था कि भारतवर्ष नाम का यह भूखण्ड एक अविभाज्य समष्टि है। उन महापुरुषों ने बार-बार इस बात की पुष्टि की थी कि भारतवर्ष हिन्दू समाज की, हिन्दू संस्कृति की और हिन्दू अध्यात्म-साधना की लीलास्थली है और हिन्दू राष्ट्र का अपना स्वदेश है। हिन्दुओं से इतर लोगों का इस भूमि में स्वागत है। किन्तु उन लोगों को हिन्दू समाज और हिन्दू संस्कृति के प्रति आदर का भाव अपनाना होगा। हमारे महापुरुषों ने भारतभूमि को अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान और बांग्लादेश में बाँट कर नहीं देखा था। आज भारतवर्ष कई भागों में बिखरा पड़ा है। वे विभिन्न भाग राजनीति को लेकर ही नहीं, संस्कृति के नाते भी परस्पर वैमनस्य का पोषण कर रहे हैं। और हम सबने इस विभाजन को स्वीकार कर लिया है। किन्तु हमारे महापुरुषों द्वारा हमें दी गई दृष्टि के अनुसार भारतवर्ष केवल भूगोल के आधार पर ही नहीं, संस्कृति के नाते भी अविभाज्य है।

स्वदेशी आन्दोलन के समय, इस शती के प्रारम्भ में, हमारे सामने इस राष्ट्रदृष्टि का उदय हुआ था।

किन्तु कई-एक अन्य दृष्टियाँ भी अपना-अपना आधिपत्य जमाने के लिए सचेष्ट थीं। इन अन्य दृष्टियों को अपने प्रसार के लिए एक सुविधा भी मिली। जिस शिक्षा-प्रणाली का विकास अंग्रेजों ने किया था, जो शिक्षा-प्रणाली हमारे ऊपर उन्होंने लाद दी थी, वह प्रणाली इन अन्य दृष्टियों की

पोषक थी। यह वही प्रणाली थी जो आज भी हमारे देश में प्रतिष्ठित है। यह प्रणाली इन अन्य दृष्टियों को अभी भी प्रोत्साहित कर रही है, इनके प्रसार में सहायक बनी हुई है।

इन अन्य दृष्टियों में से एक दृष्टि थी इस्लाम के साम्राज्यवाद की दृष्टि। इस दृष्टि के अनुसार भारतवर्ष एक वैसा-ही अन्धकारपूर्ण देश है जैसा कि इस्लाम के आविर्भाव से पूर्व का अरब देश था अथवा इस्लाम द्वारा पराभूत होने से पूर्व ईरान इत्यादि कई एक अन्य देश थे। यह दृष्टि प्रचार कर रही थी कि इस्लाम का "प्रकाश" भारतवर्ष में भी फैलना चाहिए, भारतवर्ष की भी एक दार-उल-इस्लाम के रूप में परिणति होनी चाहिए।

कुछ आगे चलकर एक अन्य दृष्टि का आयात इस देश में हुआ। वह थी ईसाई साम्राज्यवाद की दृष्टि। यह दृष्टि भी प्रचार कर रही थी कि भारतवर्ष एक अन्धकारपूर्ण देश है, ग्राम्य तथा प्राकृत आस्थाओं का देश है, विश्वास-विहीन लोगों का देश है। यह दृष्टि भारतवर्ष को ईसाइयत के "प्रकाश" से "आलोकित" करना चाहती थी, भारतवर्ष को ईसा का देश बनाना चाहती थी।

एक तीसरी दृष्टि श्वेतांग जाति के दायित्व (white man's burden) का दम्भ लेकर इस देश में आई। इस दृष्टि में इस्लाम तथा ईसाइयत के साम्राज्यवादों द्वारा छेड़े गए जिहाद की पुट तो थी ही, साथ ही साथ यह दृष्टि मानववाद तथा बुद्धिवाद की भाषा भी बोल रही थी। इसकी भाषा में नवजागरण की पुट भी थी। यह दृष्टि कह रही थी कि भारतवर्ष दिशा-विहीन, अनपढ़, दलित-वंचित तथा सब प्रकार से शोषित अभागों का

देश है, और अंग्रेज शास्ताओं तथा पाश्चात्य से इस-उस देश से आयात की हुई संस्कृति को इन अभागों के लिए भोजन जुटाना पड़ेगा, इन को स्वस्थ बनाना पड़ेगा, इन में आत्मविश्वास जगाना पड़ेगा।

तदनन्तर पाश्चात्य से एक अन्य साम्राज्यवादी दृष्टि इस देश में आई। वह थी कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद की दृष्टि। इस दृष्टि ने हमें बतलाया कि भारतवर्ष एक उपनिवेश अथवा उपनिवेश-तुल्य समाज है जिसकी जनता दो वर्गों में विभाजित है – शोषक और शोषित, दलनकारी और दलित। अब यह दायित्व कम्यूनिस्ट पार्टी का था कि भारतवर्ष को सब प्रकार के प्रमाद तथा शोषण से मुक्त करे और यहाँ की उत्पादन-व्यवस्था को संकट से बाहर निकाले। भारतवर्ष के प्रति साम्राज्यवाद की यह चौथी दृष्टि थी।

इन समस्त साम्राज्यवादी दृष्टियों के सम्पात का परिणाम हमारे लिए गम्भीर हो चला है, भयावह हो उठा है। आज इस देश में, विशेषतया इस देश के शासक वर्ग में और हमारे हिन्दू मनीषियों तथा हिन्दू समाज के शालीन वर्ग में जिस दृष्टि का बोलबाला है वह उस राष्ट्रदृष्टि से सर्वथा विपरीत है जो हमें स्वदेशी आन्दोलन के युग में मिली थी, जो हमें उस समय के अपने महापुरुषों से मिली थी।

आज हम लोगों से कहा जा रहा है कि भारतवर्ष एक अविभाज्य समष्टि नहीं है, एक देश नहीं है। हम लोगों से कहा जा रहा है कि भारतवर्ष एक उपमहाद्वीप है और उसका जो विभाजन अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान तथा बांग्लादेश के रूप में हुआ है वह इसलिए समीचीन है कि उसमें बसने वाली अनेक जातियों को अपना-अपना अलग स्वदेश

चाहिए। परिणामस्वरूप भारतवर्ष को किसी एक समाज का स्वदेश नहीं माना जा सकता। अकेले हिन्दू समाज का तो बिल्कुल नहीं।

फिर हम लोगों को बतलाया जाता है कि इस उपमहाद्वीप का इतिहास केवल हिन्दू समाज का, हिन्दू जाति का ही इतिहास नहीं है। अब यह देश एक धर्मशाला माना जाने लगा है जिसमें अनेक प्रकार के आक्रान्ता, पश्चिम तथा पूर्व तथा अन्य दिशाओं से समय-समय पर आते रहे हैं। इस प्रकार भारतवर्ष का इतिहास इन आक्रान्ताओं का ही इतिहास बनकर रह गया है। अतएव आप लोग जब इस देश के विश्वविद्यालयों, कॉलेजों तथा स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले इतिहास का अवलोकन करते हैं तो आप देखते हैं कि इस इतिहास में एक प्राचीन पर्व है जिसे हिन्दू पर्व कहा जाता है, एक मध्यकालीन पर्व है जिसे मुस्लिम पर्व कहा जाता है और एक आधुनिक पर्व है जिसे ब्रिटिश पर्व कहा जाता है। अब तो एक समकालीन पर्व का, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद शुरू होने वाले पर्व का समावेश भी इस देश के इतिहास में हो गया है। उस पर्व के सूत्रधार तथा जनक का नाम भी हमें बतलाया जाता है।

तदन्तर हम लोगों को समझाया जाता है कि भारतवर्ष का समाज एक समरस समाज नहीं है, वरन् वह एक बहु-जातीय, बहु-राष्ट्रीय, बहुभाषी समाज है। और भी अनेक प्रकार के 'बहु' उस समाज में देखे जाते हैं। हम लोगों को यह समझाया जाता है कि भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति नहीं वरन् एक संकर संस्कृति है जिसमें स्वदेशी तथा विदेशी कई एक संस्कृतियों का समावेश है। यह सब सुनकर मुझे कभी-कभी हँसी

आने लगती है। हम जिस भारतीय संगीत की चर्चा करते हैं, वह हिन्दू संगीत है, हम जिस भारतीय मूर्ति-शिल्प की चर्चा करते हैं, वह हिन्दू मूर्ति-शिल्प है, हम जिस भारतीय स्थापत्य की चर्चा करते हैं, वह समस्त, उन कतिपय गौण अंगो को छोड़कर जो विदेशी आक्रान्ता अपने साथ ले आये थे, हिन्दू स्थापत्य है। भारतीय साहित्य की तो बात ही क्या, वह तो निन्यानवे प्रतिशत हिन्दू साहित्य है। यह समस्त सांस्कृतिक सम्पदा हिन्दू समाज की थाती है। हिन्दुओं ने इसका सृजन किया है हिन्दुओं ने ही इसका संरक्षण किया है। आज भी हिन्दू ही इसको समृद्ध तथा प्रवृद्ध कर रहे हैं। किन्तु फिर भी यदि यह दावा किया जाता है कि इस देश की संस्कृति हिन्दू संस्कृति है और उस संस्कृति का इतिहास हिन्दू इतिहास का अंग है, तो लोगों को बुरा-सा लगता है। हिन्दू संस्कृति की बात करने वालों पर सम्प्रदायवादी होने का दोष लगाया जाता है।

किन्तु सबसे अद्भुत घटना जो इस देश में घटी है वह यह है कि इस देश का धर्म अब सनातन धर्म नहीं रहा। सनातन धर्म को अब इस देश में आदिम युग का अंधविश्वास समझा जाता है। कुछ लोग वेदान्त को ले लेते हैं और खूब बढ़-चढ़ कर उसकी चर्चा करते रहते हैं। कुछ अन्य लोग गीता को ले लेते हैं और गीता का गुणगान करते हुए नहीं अघाते। कुछ अन्य लोग सनातन धर्म के अन्यान्य पक्षों को लेकर चर्चा चलाते हैं, योग इत्यादि की व्याख्या करते हैं। इन लोगों को ख्याति प्राप्त होती है। चारों ओर इन लोगों का नाम लिया जाता है। ये लोग पुस्तकें लिखते हैं, भाषण देते हैं। किन्तु इन लोगों से जब यह कहा जाता है कि सनातन धर्म ने ही इस समस्त अध्यात्म-सम्पदा का सृजन किया है, इन सारे दर्शन-शास्त्रों का

संग्रह किया है, इन सारे विधि-विधानों का विकास किया है, इस सारी संस्कृति को सँवारा है तो ये लोग हामी भरना नहीं चाहते। एक नए धर्म ने सनातन धर्म का स्थान ले लिया है। इन नए धर्म का नाम है सैक्युलरिज्म।

हम लोगों को समझाया जा रहा है कि सैक्युलरिज्म के सहारे ही यह देश एक संगठित राष्ट्र बनेगा, सेक्युलरिज्म के धरातल पर ही राष्ट्रीय ऐक्य की साधना की जा सकती है। अतएव एक राष्ट्रीय ऐक्य समिति का गठन किया गया है। इस समिति ने भारत-सरकार के शिक्षा मन्त्रालय को एक ऐसा इतिहास लिखवाने का आदेश दिया है जिसमें मुसलमान आक्रमणकारियों को विदेशीय न कहा जाए, जिसमें इस्लाम के साम्राज्यवाद को बर्बर और विजातीय न माना जाए। हम लोगों से यह अपेक्षा की जा रही है कि हम इस्लाम को एक भारतीय धर्म के रूप में स्वीकार कर लें और उसको सम्मान का वही पद प्रदान करें, जो हम सनातन धर्म को देते आये हैं। इस तर्क का विस्तार अभी हमारे इतिहास के तथाकथित ब्रिटिश पर्व तक नहीं किया गया है। किन्तु कल को कुछ ऐसी आवाजें उठ सकती हैं कि अंग्रेजो को भी आक्रमणकारी तथा अनाचारी न कहा जाए। सो इसलिए कि अंग्रेजों ने हमें अंग्रेजी पढ़ाई, अंग्रेजी साहित्य से अवगत कराया, इस देश में हस्पताल, स्कूल तथा कॉलेज खोले और प्रत्येक प्रकार के आधुनिक उपकरण जुटाए।

ऐसी एक अवस्था आज इस देश में व्याप्त है। आज उस राष्ट्रदृष्टि का प्रायः पूर्ण विलोप हो चुका है जिसका उदय स्वदेशी आन्दोलन के समय हुआ था, जिसने हमारे जनगण को जगाया था और हमारे स्वाधीनता-

संग्राम को आगे बढ़ाया था। राष्ट्रदृष्टि का विलोप इस देश में अन्यत्र इतना नहीं हुआ है जितना कि बंगाल में अथवा केरल में अथवा उन अन्य अंचलों में जहाँ अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार अपेक्षाकृत अधिक देखा जाता है। आज ऐसी अवस्था इस देश की हो गई है।

सैक्युलरिज्म को ही ले लीजिए। हमने इस धारणा का आयात आधुनिक योरप से किया है। योरप में ईसाई चर्च ने बहुत रक्तपात किया था एक-सौ-वर्ष, दो-सौ-वर्ष व्यापी युद्ध लड़े थे। ईसाइयत का उदय होते ही योरप एक गहन अंधकार में डूब गया था। मानवीयता, बुद्धिप्रवणता तथा सर्वजन हिताय-भावना जिनको मानव-सुलभ आस्थाएँ माना जाता है, वे सब ईसाइयत की हठधर्मिता के नीचे दब गईं थीं। योराप के कुछ लोगों ने ईसाइयत के विषय में विचार करना शुरू किया, विशेषतया ईसाइयत के उस पक्ष का परीक्षण जिसके अनुसार चर्च ने राजतन्त्र को पाशबद्ध किया हुआ था। योरप का सम्पर्क भारत, चीन तथा कई-एक अन्य देशों की प्राचीन संस्कृतियों से हो चुका था। फलस्वरूप वहाँ मानववाद, बुद्धिवाद तथा विश्ववाद की एक नई लहर उठने लगी थी। वहाँ चर्च के विरूद्ध एक संघर्ष का सूत्रपात हुआ था और धीरे-धीरे राजतन्त्र को चर्च के चंगुल से छुड़ा लिया गया था। इस संघर्ष ने ही योरप में सैक्युलरिज्म की धारणा को जन्म दिया था। यह एक बहुत ही कल्याणकारी धारणा थी, विशेषतया उन देशों के लिए जो मतान्ध राजतन्त्रों द्वारा पीड़ित थे, जो ईसाइयत की अमानवीय तत्वमीमांसा द्वारा दलित थे। यह धारणा अब भी उन देशों के लिए कल्याणकारी है जो इस्लाम के चंगुल में फंसे हुए हैं।

किन्तु भारतवर्ष में इस धारणा का प्रचार उस हिन्दू समाज को लक्ष्य करके किया जा रहा है जिसमें धर्म को लेकर कभी कोई मारकाट नहीं मची, धर्म को लेकर कभी कोई तनाव नहीं खड़ा हुआ। अभी कुछ दिन पहले मैं पूर्व के कई –एक देशों की यात्रा कर रहा था। चीन के बौद्ध भिक्षुओं से बात करने का अवसर मुझे मिला मैंने उनसे पूछाः "चीन में बौद्धधर्म बाहर से आया था। चीन में कन्फ्यूसियस द्वारा प्रवर्तित धर्म पहले से विद्यमान था। ताओ द्वारा प्रवर्तित धर्म भी। क्या बौद्धधर्म तथा चीन के पुराने धर्मों के बीच कोई द्वन्द देखा गया?" उन्होंने उत्तर दिया; "नहीं, कभी नहीं।" द्वन्द का एक भी अवसर इसलिए नहीं आया कि कन्फ्यूसियस तथा ताओ के धर्म भी अध्यात्म की उसी गहन-गम्भीर भूमि से उद्भूत हुए थे जिससे कि सनातन धर्म की सरिता बह कर आई थी, जिससे कि बौद्धधर्म, जैनधर्म तथा वैष्णवधर्म का उद्गम हुआ था। इन धर्मों में मानवजाति को दिए गए एक ही अध्यात्म-सन्देश के विविध पर्याय पाए जाते हैं। मैंने जापान में यह जानने की कोशिश की कि बाहर से आए हुए बौद्धधर्म के साथ वहाँ के प्राचीन शिन्तो धर्म का क्या कभी कोई संघर्ष हुआ। वहाँ भी मुझे यही उत्तर मिला कि ये दोनों धर्म कभी आपस में नहीं टकराए। आज भी वहाँ दोनों धर्म परस्पर सौहार्द के साथ रह रहे हैं। मेरी एक टैक्सी चालक के साथ चर्चा चली। वह एक प्रबुद्ध व्यक्ति था। उसने मुझसे कहा "मैं तो बौद्ध भी हूँ और शिन्तो भी।" प्राचीन ग्रीस, प्राचीन रोम तथा एशिया और योरप के अन्यान्य प्राचीन देशों की कहानी भी यही है। ईसाइयत के उदय से पहले धर्म को लेकर कभी कोई युद्ध नहीं हुआ था।

धर्म के नाम पर होने वाले युद्धों का सूत्रपात सर्वप्रथम ईसाइयत ने ही किया। इस्लाम का आविर्भाव होने पर ये युद्ध और भी रक्तरंजित हो उठे। किन्तु योरप में मानववाद, बुद्धिवाद तथा विश्ववाद की लहर उठने से राजतन्त्र पर से ईसाइयत का सिक्का समाप्त हो गया। और इस प्रकार सैक्युलरिज्म की धारणा ने जन्म लिया। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ यह धारणा योरप के प्रसंग में बहुत कल्याणकारी सिद्ध हुई। परिणामस्वरूप योरप के समाज ने बहुत प्रगति की, योरप में विज्ञान का विकास हुआ, तकनीकी का विकास हुआ और योरप के देश सामाजिक कल्याण की दिशा में आगे बढ़े। यह सब सम्पदा योरप को सैक्युलरिज्म की धारणा से ही उपलब्ध हुई।

किन्तु हिन्दू समाज तो सदा ही और स्वभावतः ही एक सैक्यूलर समाज रहा है। हिन्दू समाज में धर्म को लेकर कभी कोई रक्तपात नहीं हुआ। हिन्दू समाज ने कभी किसी मतान्ध राजतन्त्र को जन्म नहीं दिया। किसी भी हिन्दू राजा का उदाहरण ले लीजिए। व्यक्तिगत निष्ठा के नाते वह चाहे बौद्ध रहा हो, चाहे जैन, चाहे वैष्णव, चाहे किसी अन्य सम्प्रदाय का अनुयायी। किन्तु उसके दरबार में, उसके राज्य में सभी धर्मों का समानरूप से सत्कार हुआ है, समानरूप से संरक्षण हुआ है। अथवा यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इस देश में सन्त-महात्मा ही राजा के श्रद्धाभाजन रहे हैं, न कि राजा सन्त-महात्माओं का श्रद्धाभाजन। यहाँ के सन्त-महात्माओं को आर्चबिशप ऑफ कैन्टरबरी की नाईं राजा के दरबार में हाजिर नहीं होना पड़ा। इंग्लैंड का राजा वहाँ के धर्म का परित्राता कहलाता है। भारत में किन्तु राजा को ऋषियों, मुनियों तथा सन्त-

महात्माओं की शरण में जाकर उपदेश सुनना पड़ता था। इस प्रकार के इस देश में, इस प्रकार के इस समाज में योरप से सैक्युलरिज्म की धारणा का आयात किया गया है। यही नहीं सैक्युलरिज्म की धारणा का उपयोग हिन्दू समाज के विरुद्ध एक अस्त्र के रूप में किया जा रहा है। आप सब यह जानते हैं कि सैक्युलरिज्म का अर्थ इस देश में क्या है। इस शब्द को सुनते ही आपको इसमें भरी हिन्दू-विद्वेष की भावना का संकेत मिलता है। इस देश में आज सैक्युलरिज्म का एक ही काम है- हिन्दू समाज को कोसना, हिन्दू संस्कृति को कोसना, हिन्दू इतिहास को कोसना। जो कुछ हिन्दू कहा जाता है उस सबको कोसना ही सैक्युलरिज्म कहलाता है। हिन्दू शब्द ही एक कुशब्द बनकर रह गया है। सैक्युलरिज्म के शब्दकोष में मुसलमान एक अल्पसंख्यक समुदाय है, ईसाई भी एक अल्पसंख्यक समुदाय है। किन्तु हिन्दू समाज एक "वीभत्स" बहुमत है। सैक्युलरिज्म नाम का यह धर्म ही आज सनातन धर्म का स्थान लेता जा रहा है। यह एक नई दृष्टि है जिसने सनातन धर्म की दृष्टि का स्थान ग्रहण किया है। और सनातन धर्म की दृष्टि द्वारा पुष्ट समाज तथा संस्कृति तथा इतिहास तथा अन्य समस्त सम्पदा हेय होते जा रहा हैं।

सैक्यूलरिज्म के इस अनाचार को देखकर सैक्यूलरिज्म द्वारा प्रसारित इस हिन्दू-विद्वेष को देखकर, हिन्दू समाज को यह आभास होने लगा है कि कहीं न कहीं कोई बहुत बड़ा घोटाला है। सैक्युलरिज्म का प्रश्रय पाकर तथाकथित अल्पसंख्यक समाज उत्तरोत्तर उद्धत होते जा रहे हैं। ईसाई मिशनरियों को अरबों डालर पाश्चात्य राष्ट्रों के सैन्य-प्रतिष्ठानों से, गुप्तचर-संस्थानों से तथा अन्यान्य सरकारी विभागों से प्राप्त होते हैं। इस

प्रचुर धनराशि को इस देश में लाकर ये लोग बड़े-बड़े मिशनों की स्थापना करते हैं, गिरजाघर बनाते हैं, हिन्दुओं को ईसाई बनाने में व्यय करते हैं। इस प्रकार इस देश में ईसाइयत का "प्रकाश" फैलाया जा रहा है। इस्लाम भी यही सब कर रहा है। जब से पेट्रोल के बदले में प्राप्त मुद्रा का भण्डार भरने लगा है, जब से अरब देश धनाढ्य होने लगे हैं, तब से इस्लाम का आत्मविश्वास इस देश में बहुत बढ़ गया है। देश के विभाजन के बाद इस्लाम का आत्मविश्वास कुछ-कुछ कुण्ठित हो गया था। किन्तु अब वह फिर से मुस्लिम लीग के दिनों की याद दिलाने लगा है। आप लोग मुस्लिम प्रतिष्ठानों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर देखिए, विशेषतया उर्दू भाषा में छपी पत्र-पत्रिकाएँ। आप तुरन्त ही समझ जाएँगे कि इस्लाम का साम्राज्यवाद आज किस प्रकार फिर से आक्रामक रवैया अख्तियार करता जा रहा है।

इन सभी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप, सैक्यूलरिज्म की इस मूढ मीमांसा को सुनकर, और कुछ काल तक सुषुप्त रहने वाली इन पुरानी साम्राज्यवादी शक्तियों के आक्रमण का नया रूप देखकर, हिन्दू समाज में आज एक प्रकार के पुनर्जागरण और पुनरुत्थान की लहर उमड़ रही है। विश्व हिन्दू परिषद् इस जागरण को संगठित करने के लिए, इस उत्साह को एक दिशा देने के लिए, नेतृत्व की भूमिका निभा रहा है। किन्तु मेरा मन कहता है कि जब तक स्वदेशी आन्दोलन द्वारा प्रदत्त राष्ट्रदृष्टि का पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, पुनरनुमोदन तथा नवीन परिस्थिति में पुनर्स्थापन नहीं होता, तब तक यह सारा प्रयास सफल नहीं हो पाएगा, सक्षम नहीं हो

सकेगा। इस पुनर्स्थापन के प्रसंग में मैं जो कुछ समझ पाया हूँ, वही आज कुछ शब्दों में कहना चाहता हूँ।

राष्ट्रदृष्टि के पुनर्स्थापन के लिए सब से पहिला काम जो हमें करना होगा वह है सारे संसार के समक्ष यह घोषणा करना कि हम इस प्राचीन देश को, इस भारतवर्ष को एक अविभाज्य समष्टि मानते है और इसका जो विभाजन आज अफगानिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान तथा बांग्लादेश के रूप में हो गया है, वह हमें मान्य नहीं। यह घोषणा करने में हमें कोई संकोच अथवा संशय नहीं होना चाहिए। ऐसा कई-एक देशों के इतिहास में देखा गया है कि साम्राज्यवादी शक्तियों ने उन पर आक्रमण करके उनके कतिपय अंचलों को अपने अधिकार में कर लिया है। अतएव हमारे मन में अधुना यह धारणा स्पष्ट हो जानी चाहिए कि अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश कहलाने वाले भू-भाग हमारे स्वदेश के अंग हैं और उनको वापस लेने के लिए हम कृतसंकल्प हैं। हम को निःसंकोच यह कहना चाहिए कि अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांगलादेश इस्लाम के उस साम्राज्यवादी कुचक्र का परिणाम हैं जो एक सहस्र वर्ष तक इस देश पर चला था। हमें कहना चाहिए कि हम उस परिणाम को स्वीकार नहीं करते और देर से या सबेर से हम मातृभूमि के इस विभाजन को विफल करके रहेंगे तथा इस्लाम के साम्राज्यवाद ने हमारे जिन भाइयों को हम से विमुख किया है उन सबको हम फिर से अपने परिवार में मिलाएँगे।

हमारे कुछ भाई आज मुसलमान कहलाते हैं, कुछ ईसाई। ये सब हमारे अपने हैं। हमें इनके विरुद्ध कुछ नहीं कहना। किन्तु इस्लाम अथवा ईसाइयत के साम्राज्यवाद ने जो अवशेष इस देश में छोड़े हैं उनको हम सहन नहीं करेंगे। इस्लाम के साम्राज्यवाद की पराजय हो चुकी है, उसका पतन हो चुका है। अब इस देश में इस्लाम के लिए कोई स्थान नहीं। ईसाइयत के साम्राज्यवाद की भी पराजय हो चुकी है, उसका भी पतन हो चुका है। अब इस देश में ईसाइयत के लिए कोई स्थान नहीं। ये सब बातें हमें स्पष्ट शब्दों में कहनी होंगी।

दूसरी बात जो हमें स्पष्ट शब्दों में और बिना संकोच के कहनी होगी वह यह है कि भारतवर्ष का इतिहास हिन्दू समाज का इतिहास है, हिन्दू राष्ट्र का इतिहास है और हम उस इतिहास के किसी भी पर्व को मुस्लिम अथवा ब्रिटिश पर्व नहीं मानते, हम उस इतिहास के किसी भी काल को ममलूक अथवा खिलजी अथवा तुगलक अथवा लोधी अथवा मुगल वंश का काल कहकर नहीं पुकारेंगे। हम अपने इतिहास का वर्णन अपने वीरपुरुषों की गौरवगाथा के रूप में करेंगे – पृथ्वीराज चौहान का युग, महाराणा सांगा का युग, कृष्णदेव राय का युग, महाराणा प्रताप का युग, छत्रपति शिवाजी का युग और ऐसे ही अन्य अनेक युग। हम नहीं मानते कि इस देश में कभी कोई मुस्लिम साम्राज्य था। हम उस सारे काल खंड को एक ऐसे युग के रूप में देखते हैं जिसमें हमने इस्लाम के साम्राज्यवाद के साथ एक दीर्घकाल-व्यापी संघर्ष किया था। वह संघर्ष हमारे राष्ट्र का संरक्षण-संग्राम था, मुक्ति-संग्राम था। उस संघर्ष में हमने इस्लाम के साम्राज्यवाद को पराजित किया था। इसी प्रकार हम किसी अंग्रेज

वायसराय अथवा गवर्नर जनरल को भारत के शासक के रूप में नहीं पहचानते। हम उन सबको साम्राज्यवादी घुसपैठिए ही मानते हैं। आजकल हमारे स्कूलों तथा कालिजों में भारतवर्ष के इतिहास का जो साम्राज्यवादी पाठ पढ़ाया जाता है, उसका हमें प्रत्याख्यान (rejection) करना होगा।

भारतवर्ष में तथाकथित मुस्लिम साम्राज्य की कहानी ही ले लीजिए। अपने नबी की मृत्यु के कुछ ही वर्ष उपरान्त इस्लाम ने एशिया तथा अफ्रिका के बड़े-बड़े भू-भाग जीत लिए थे। किन्तु उसी इस्लाम को भारत-भूमि पर प्रथम पदार्पण करने के लिए सत्तर वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा था। दिल्ली तक पहुँचने के लिए इस्लाम को और भी पांच सौ वर्ष तक जूझना पड़ा था। तदन्तर कई-सौ वर्ष और इस्लाम को दक्षिण का द्वार खोलने में लगे थे। और अन्ततः हमारे राष्ट्रव्यापी मुक्ति-संग्राम के सामने इस्लाम को परास्त होकर लगातार पीछे हटना पड़ा था। शिवाजी के उत्थान के साथ-साथ उस साम्राज्यवाद के पाँव उखड़ गए थे। अतएव उस युग के हमारे इतिहास की सही वर्णन यही है कि हमने इस्लाम के साम्रज्यावाद के साथ एक दीर्घकालव्यापी संघर्ष किया। उस संघर्ष को भारत में इस्लाम की विजययात्रा के रूप में नहीं देखा जा सकता, संघर्ष के उस पर्व को भारतीय इतिहास का मुस्लिम पर्व नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रदृष्टि का पुनरनुमोदन करने के लिए तीसरी बात जो हमें कहनी होगी वह यह है कि हिन्दू संस्कृति ही भारतवर्ष की राष्ट्रीय संस्कृति है। सनातन धर्म की यह संस्कृति एक विराट तथा बहुमुखी संस्कृति है। किन्तु साथ ही साथ यह एक ऐसी संस्कृति है जो मानवजाति के लिए स्वभाव-

सुलभ है। इस संस्कृति में ऐसा कुछ भी नहीं जिसे कृत्रिम कहा जा सके, जिसका निर्माण मनुष्य के बाह्य मानस द्वारा हुआ हो, और जिसको ईसाइयत, इस्लाम तथा कम्युनिज्म की संस्कृतियों की नाईं बलात् लादा गया हो। अतएव ऐसी प्रत्येक संस्कृति को जो हिन्दू संस्कृति के अनुकूल न हो, जो सनातन धर्म की संस्कृति के साथ मेल न खाती हो, भारतवर्ष से भागना पड़ेगा। भारतवर्ष में अब किसी भी विपरीत संस्कृति के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। "अल्पसंख्यकों के अधिकार" की दुहाई देने वाली विपरीत संस्कृतियों को अब इस देश में फलने-फूलने नहीं दिया जाएगा।

चौथी बात जो हमें कहनी होगी वह यह है कि हिन्दू समाज ही भारतवर्ष का राष्ट्रीय समाज है। यह एक बृहत् समाज है जिसमें मानव-प्रकृति के अनेक पक्षों का प्रस्फुटन हुआ है, जिसमें अनेक सामाजिक परम्पराओं का पोषण हुआ है। आज हम पर वह लांछन लगाया जाता है कि हमने अपने तथाकथित आदिवासियों की अवहेलना की है। यह लांछन हम पर बारम्बार लगाया जाता है। किन्तु हम जब अपने इतिहास का पर्यावलोकन करते हैं तो हम देखते हैं कि हमने कभी भी अपने समाज के किसी भी जनसमुदाय की जीवन-प्रणाली के साथ छेड़छाड़ नहीं की। हमने चालीस धर्मशास्त्रों की रचना इसीलिए की थी कि हमारे देश के विविध अंचलों तथा जनसमुदायों की परम्पराओं, प्रणालियों और संस्थाओं का समन्वय हो सके। हमने उन धर्मशास्त्रों पर चार सहस्र टीकाएँ इसीलिए लिखी थी कि हमारे देश की विभिन्न जातियाँ, यहाँ के विभिन्न वर्ण और जनपद अपने-अपने अनुकूल विधि-विधान बना सकें। तो हिन्दू समाज एक विराट और वैविध्य-सम्पन्न समाज है। यदि इस देश का कोई

जनसमुदाय हिन्दू समाज के अनुकूल आचरण करने के लिए तैयार नहीं होता तो उस जनसमुदाय का इस देश में कोई स्थान नहीं। इस प्रकार के जन समुदाय को हम अल्पसंख्यक होने के नाम पर विशेषाधिकार मांगने की छूट नहीं दे सकते।

अन्त में हमको यह घोषणा करनी होगी कि हिन्दू समाज भारतवर्ष में एक ही धर्म को मान्यता प्रदान करता है, एक ही धर्म को स्थान दे सकता है। वह धर्म है सनातन और उसकी प्रकृत अध्यात्म-सम्पदा। उस धर्म में मनुष्य की समस्त सहज प्रवृत्तियों को यथोचित स्थान दिया गया है। सनातन धर्म में निरीश्वरवाद, संशयवाद तथा जड़वाद का भी स्थान है। यदि किसी प्रवृत्ति का स्थान सनातन धर्म में नहीं है तो उस बलपूर्वक और छलावे वाली प्रवृत्ति का जो धर्म के नाम से आगे बढ़ना चाहती है। साम्राज्यवाद यदि धर्म का रूप धारण करके आता है तो सनातन धर्म उसको स्वीकार नहीं करता। जो भी धर्म भारतवर्ष में फलना-फूलना चाहता है उसको सनातन धर्म की अध्यात्म-सम्पदा के अनुकूल आचरण करना पड़ेगा। इस्लाम और ईसाइयत जैसे साम्राज्यवादी लिप्सा से लदे हुए मतवादों को इस देश में कोई स्थान नहीं मिल सकता।

यह है उदीयमान राष्ट्रदृष्टि की रूपरेखा। सारा भारतवर्ष हिन्दू समाज का स्वदेश है। भारतवर्ष का इतिहास हिन्दू समाज का इतिहास है। हिन्दू समाज ही भारतवर्ष का राष्ट्रीय समाज है। हिन्दू संस्कृति हो भारतवर्ष की राष्ट्रीय संस्कृति है। और सनातन धर्म भारतवर्ष का राष्ट्रधर्म है। यह है वह राष्ट्रदृष्टि जिसको हमें पुनः पुष्ट करना पड़ेगा।

और इस पुष्टि के कई एक निहितार्थ (implications) हैं जिन्हें हमको हृदयंगम कर लेना चाहिए। जबतक हमारी दृष्टि हमारे मन में स्पष्ट नहीं होगी, जबतक वैचारिक संघर्ष के लिए तैयार नहीं होंगे, जबतक हमें अपने विषय में तथा जिन शक्तियों के साथ हमें संघर्ष करना है उनके विषय में सम्यक् ज्ञान नहीं होगा, तबतक हम यह युद्ध नहीं जीत सकते। अतीत में तथा वर्तमान में हिन्दू समाज के प्रति, हिन्दू संस्कृति के प्रति तथा सनातन धर्म के प्रति कई-एक वैचारिक आक्रमण होते रहे हैं। एक ओर से ईसाइयत का आक्रमण है तो दूसरी ओर से इस्लाम का तथा एक अन्य ओर से कम्यूनिज्म का। इन सब आक्रमणों के समक्ष हम रक्षात्मक रवैया ही अपनाते आए हैं। इससे काम नहीं चलेगा।

आज भारतवर्ष में हिन्दू मात्र का एक केवल एक ही परिचय रह गया है, वह एक ही संज्ञा से जाना जाता है। हिन्दू अर्थात सम्प्रदायवादी। ईसाइयत, इस्लाम तथा कम्यूनिज्म का साहस इतना बढ़ गया है कि हिन्दू को अपने ही स्वदेश में सम्प्रदायवादी कह कर पुकारा जा रहा है। यह संसार का नवां आश्चर्य है। मुझे ज्ञात नहीं आजकल संसार में कितने आश्चर्य गिने जाते हैं। किन्तु यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है। यह इसीलिए सम्भव हो सका है कि हिन्दू समाज ने अज्ञान के वशीभूत होकर इस्लाम तथा ईसाइयत को धर्म मान लिया है। हमें इस मान्यता को छोड़ना पड़ेगा। राष्ट्रदृष्टि का यह पहला निहितार्थ (implication) है।

धर्म होने का दावा करके ईसाइयत और इस्लाम विशेषाधिकार माँग रहे हैं, विशेष स्थान और विशेष संरक्षण माँग रहे हैं। इस्लाम को ही ले

लीजिए। इसके द्वारा पावन मानी जाने वाली पुस्तकों में जिहाद और नरमेध का विधान दिया गया है। इसका सारा इतिहास रक्तरंजित है। इसके उपासना-स्थान सदा ही एक राजनीतिक दल के दफ्तर तथा शस्त्राशस्त्रके भण्डार रहे हैं। फिर भी इस्लाम दावा करता है कि यह एक धर्म है। इस समय मैं इस गहन मीमांसा में नहीं पड़ूँगा कि इस्लाम तथा ईसाइयत को धर्म क्यों नहीं माना जा सकता। एक सीधी सी बात से ही यह सब स्पष्ट हो जाता है। ईसाइयत तथा इस्लाम मानवजाति को दो वर्गों में विभक्त करते हैं - विश्वासी और अविश्वासी, मोमिन और काफिर। इसी से यह सिद्ध हो जाता है कि ये धर्म नहीं प्रत्युत् राजनीतिक मतवाद मात्र है। इनको सीधा अस्वीकार (reject) करना चाहिए। इन मतवादों के बचाव में कितने ही पुस्तकालय क्यों न भरे गए हों, इनकी खंडन-मंडन की प्रक्रियाएँ कितनी ही प्रशस्त क्यों न हों, हमें इनको अस्वीकार करना होगा। हमको दृप्त कण्ठ से यह घोषणा करनी होगी कि हम ईसाइयत तथा इस्लाम को धर्म नहीं मानते।

यह घोषणा करने का साहस हम तब तक नहीं जुटा पाएँगे जब तक कि स्वयं हमें अपने कथन की सच्चाई पर पूरा विश्वास नहीं हो जाता। और हमें वह विश्वास तब तक नहीं होगा जब तक कि हम इन तथाकथित धर्मों का गहन अध्ययन नहीं करते। मैंने श्री रामस्वरूप की सहायता से ईसाइयत और इस्लाम का अध्ययन किया है। श्री रामस्वरूप को इन मतों का तथा इनके तथाकथित धर्मग्रन्थों और पावन परम्पराओं का गहरा ज्ञान है। इन ग्रन्थों तथा परम्पराओं में एकेश्वरवाद बहुत मिलता है, वितण्डावाद की भी भरमार है। किन्तु इनमें अध्यात्म बिल्कुल नहीं मिलता। अध्यात्म

के बिना क्या किसी धर्म की कल्पना की जा सकती है? धर्म तो मनुष्य के अध्यात्म-अन्वेषण का ही दूसरा नाम है। धर्म का सम्बंध मनुष्य की आत्मा के साथ है, उसके अंतरतम की गम्भीर अभीप्साओं के साथ है, उनकी चेतना की बृहत् तथा उत्तुंड उडान के साथ है। किन्तु ईसाइयत तथा इस्लाम की किताबों में ऐसा कुछ नहीं मिलता। वहाँ मिलती है एक पराक्रम-परायण राजनीति। वहाँ मिलती है लोगों को युद्ध में परास्त करके उनका मतान्तरण करने की एक साम्राज्यवादी स्पृहा।

राष्ट्रदृष्टि का दूसरा निहितार्थ यह है कि हमारे जिन भाइयों को बलात् इन विपरीत मतवादों के घेरे में फांस लिया गया है, धर्म होने का पाखण्ड करने वाले इन साम्राज्यवादी कुचक्रों की कारा में बाँध लिया गया है, उनको हम उनके पैतृक समाज में वापस लाएँगे। वे सब लोग हमारे अपने लोग हैं। ईसाइयत का प्रत्याख्यान करते समय हम ईसाइयों का प्रत्याख्यान नहीं करते। इस्लाम का प्रत्याख्यान करते समय हम मुसलमानों का प्रत्याख्यान नहीं करते। ईसाई और मुसलमान हमारे सहोदर हैं। उन लोगों को इस्लाम तथा ईसाइयत के कारागारों से मुक्त करना होगा, उनको मतान्धता के गहन कूपों से बाहर निकालना पड़ेगा।

राष्ट्रदृष्टि के ये दो निहितार्थ है जिनको हमें स्पष्टतया समझ लेना चाहिए। हिन्दू समाज को विचारात्मक संघर्ष के लिए सन्नद्ध होना पड़ेगा। हिन्दू समाज को अपने इतिहास को समझना होगा, अपने धर्मग्रन्थों को समझना होगा, अपनी संस्कृति को गहनता से तथा विस्तार से समझना होगा, और एक राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान को समझना होगा। साथ

ही साथ हिन्दू समाज को इस्लाम तथा ईसाइयत तथा कम्युनिज्म का परिचय उनके अपने सूत्रों से संग्रह करना होगा, उनकी अपनी पुस्तकों से प्राप्त करना होगा। जो जड़वाद आज अमरीकी भोगवाद का रूप धारण करके आ रहा है उसको भी इसी प्रकार समझना होगा। यह सब समझ-बूझ यदि हम नहीं जुटा पाए तो हम संघर्ष में हार जाएँगे।

हिन्दू समाज जब तक रक्षात्मक रहेगा तब तक उसके ये पुराने प्रतिद्वन्द्वी अपने आजमाए हुए हथियार उस पर चलाते रहेंगे। वे हमको सम्प्रदायवादी इत्यादि कहते रहेंगे। 1920 में जब कांग्रेस ने खिलाफत की हिमायत की थी तब से लेकर आज तक हिन्दू समाज रक्षात्मक रहा है, तथा इस्लाम आदि शत्रु-शक्तियाँ आक्रामक रही हैं। इस्लाम का दावा है कि वह एकेश्वरवाद का सिद्धांत है जबकि हिन्दू धर्म बहुदेववादी है। इस्लाम का दावा है कि वह एक जात-पात-विहीन समाज का द्योतक है, जबकि हिन्दू धर्म जात-पात की ऊंच-नीच का ही दूसरा नाम है। इस प्रकार की अनेक और बातें इस्लाम की ओर से कही जाती हैं। इस अवस्था में हम यदि हिन्दू समाज के स्वरूप को नहीं समझते, वर्णाश्रम धर्म को नहीं समझते, और यह नहीं जानते कि इस समाज व्यवस्था ने किस प्रकार हमारा संरक्षण किया है, तो हम धोखे में आ जाते हैं।

बहुत कम लोग यह जानते हैं कि इस देश के मुसलमान सदा से तीन वर्गों में विभाजित रहे हैं और मुसलमानों में भी अधिक नहीं तो उतनी ही जातियाँ अवश्य हैं जितनी कि हिन्दुओं में पाई जाती हैं। विदेश से आने वाले अरब, तुर्क तथा ईरानी आक्रमणकारियों के वंशजों को मुसलमानों

में अशरफ कहा जाता है। यह शब्द शरीफ का बहुवचन है और इसका अर्थ है कुलीन वर्ग, आभिज्यात्य वर्ग। ब्राह्मण तथा राजपूत इत्यादि ऊंची जाति के जिन हिन्दुओं को किसी समय मुसलमान बनना पड़ा था उनको अजलाफ कहा जाता है। और नीच कहलाने वाली जातियों के जो हिन्दू मुसलमान बनाए गए उनको अरज़ाल कहा जाता है। यह शब्द रज़ील का बहुवचन है और इसका अर्थ है नीच, कमीना। मुसलमानों के बीच व्यवहार में आने वाली इस जातिसूचक भाषा से हम लोग परिचित नहीं हैं। इसलिए मुसलमान लोग जब हिन्दू समाज को जात-पांत वाला समाज और अपने समाज को जात-पांत विहीन समाज कहकर डींग हाँकते हैं तो हम लोग धोखे में आ जाते हैं।

इस्लाम द्वारा हाँकी जाने वाली एकेश्वरवाद की डींग को ही ले लीजिए। यह एक बहुत ही बीभत्स विचार है। यह एक आध्यात्मिक विचार बिल्कुल नहीं है। इस विचार के अनुसार ईश्वर सृष्टि से बाहर है और सृष्टि में कुछ भी ऐसा नहीं जिसमें ईश्वरीयता का समावेश हो। यह एक मनगढ़न्त मीमांसा है, केवल बुद्धि की उछल-कूद है। फिर भी हम बहुत दिन से यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं कि हम भी एकेश्वरवादी हैं। एकेश्वरवाद के इस ढकोसले को बुद्धि की डींग समझ कर एक ओर ढकेलने के लिए यह आवश्यक है कि हम सनातन धर्म को हृदयंगम करें और इस्लाम के मतवाद को जानें।

एक अन्य प्रकार के संघर्ष से बचने के लिए, विचारात्मक संघर्ष करना पड़ता है। जो समाज विचारात्मक संघर्ष करने से कतराते हैं, जो

समाज विचारात्मक आक्रमण को परास्त नहीं कर पाते, वे समाज देर से अथवा सवेर से सशस्त्र आक्रमण को आमंत्रित करते हैं। यदि विचारात्मक आक्रमण को नहीं रोका जाता तो उसका शिकार होने वाले समाज को निरीह मान लिया जाता है और उस समाज पर सशस्त्र आक्रमण होकर ही रहता है। यह प्रकृति का नियम है। हमने मुस्लिम लीग द्वारा किए जाने वाले विचारात्मक आक्रमण के विरुद्ध संघर्ष नहीं किया था। कम्युनिस्ट पार्टी ने भी आगे चलकर उस आक्रमण में लीग का साथ दिया था। इस आक्रमण की कहानी मैं जानता हूँ। मैं स्वयं उस समय तक कम्यूनिस्ट था। हमारी उस भूल का परिणाम हमारे सामने है। हमारे ऊपर सशस्त्र आक्रमण हुआ। देश का विभाजन किया गया। लाखों लोग बेघर हो गए, लाखों को प्राण गँवाने पड़े।

अतएव, यदि हम अपने समाज को सशस्त्र आक्रमण से बचाना चाहते हैं, मार काट से बचाना चाहते हैं, दंगा-फसाद और रक्तपात से बचाना चाहते हैं, तो हमको तुरन्त ही इस विचारात्मक संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए। किन्तु उस संघर्ष में सफलता पाने के लिए हमें सब प्रकार से सन्नद्ध होना होगा। हमें अपने हिन्दू समाज को, अपनी हिन्दू संस्कृति को, अपने हिन्दू इतिहास को और अपने सनातन धर्म को हृदयंगम करना होगा। हमें इस्लाम, ईसाइयत तथा कम्युनिज्म को भी उनके अपने सूत्रों से, उनके अपने मुखों से सुनकर समझना होगा। इन विपक्षी मतवादों के विषय में हमें मनगढ़न्त धारणाएँ नहीं बनानी चाहिए। हमें इन मतवादों को उसी रूप में देखना चाहिए जिस रूप में इनका प्रतिपादन इनके प्रणेताओं ने किया है।

हम हिन्दुओं की एक बहुत बुरी आदत है, एक आत्मघाती आदत है। विपक्षी मतवाद अपने विषय में जो कुछ दावे करते हैं, उन्हीं को हम अपनी पावन परम्पराओं में, अपने धर्मशास्त्रों में खोज निकालते हैं। ईसाइयत को हम अपने धर्मशास्त्रों में खोजने का प्रयास करते हैं। इस्लाम को और कम्युनिज्म को भी। यह एक बहुत बुरी आदत है। हमें अपने विपक्षी को उसके असली रूप में जानना चाहिए। अन्यथा हम विचारात्मक संघर्ष नहीं कर पाएँगे।

आज भारतवर्ष में ईसाइयत एक विचारात्मक संघर्ष के लिए तैयार है। पिछले बहुत से बरसों से ईसाई मिशनरी हिन्दू धर्म का, हिन्दू समाज का, हिन्दू संस्कृति का अध्ययन करके उन सब की छीछालेदार करते रहे हैं। वे हमारे मर्म-स्थल पर चोट करना जानते हैं, वे सब प्रकार के हथकण्डे जानते हैं। इस्लाम ने हमारे धर्म, हमारे समाज तथा हमारी संस्कृति का वैसा अध्ययन नहीं किया है। किन्तु इस्लाम जानता है कि जब-जब वह एकेश्वरवाद का दावा करेगा, समता का दावा करेगा, मानवजाति के भाईचारे की बात कहेगा, तब-तब हिन्दू भाग खड़े होंगे। जहाँ तक इस्लाम के अपने मतवाद का प्रसंग है, उसको विस्तार-पूर्वक और सांगोपांग पढ़ाने के लिए उसने अनेक प्रतिष्ठान खड़े किए हैं। इन प्रतिष्ठानो के लिए धन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। नित नए इस्लामी विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं। आप लोगों ने शायद समाचारपत्रों में पढ़ा होगा कि नई दिल्ली में इस्लाम का एक सांस्कृतिक केन्द्र खड़ा करने के लिए पन्द्रह करोड़ रुपए की योजना बनाई गई है। उपराष्ट्रपति हिदायतुल्ला ने इस विषय में एक वक्तव्य दिया है। अरब राष्ट्रों ने जिस इस्लामिक कोऑपरेटिव बैंक

की स्थापना की है, वह यह धनराशि देगा। भारत सरकार भी अपनी ओर से इसमें सहायता देगी।

किन्तु आज भारतवर्ष में एक भी ऐसा प्रतिष्ठान नहीं जिसको सही अर्थों में हिन्दू प्रतिष्ठान कहा जा सके। हमारे पास बहुत से आश्रम और मठ हैं तथा कुछ प्रकाशन संस्थान हैं। हमारे पास बहुत से स्वामी है जो हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की चर्चा करते रहते हैं। किन्तु सारे देश में एक भी ऐसा संस्थान नहीं जो हिन्दू दृष्टि से विद्वता का विस्तार करता हो, जो हिन्दुओं की समस्त सांस्कृतिक सम्पदा को एक सूत्र में बांधता हो और जो इस्लाम, ईसाइयत तथा कम्यूनिज्म के सच्चे स्वरूप को हमारे सामने रख सके। सारे देश में एक भी ऐसा संस्थान नहीं जो तुलनात्मक पद्धति से इन सारे मत-मतान्तरों का अध्ययन करे और विचारात्मक संघर्ष के लिए हमारी अपनी दृष्टि को प्रखर बनाए। उदीयमान राष्ट्रदृष्टि का पुनरनुमोदन करना ही पर्याप्त नहीं है। उस दृष्टि को विचारात्मक संघर्ष के लिए सन्नद्ध करना पड़ेगा।

अपना वक्तव्य पूरा करने से पहले मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। जिस विचारात्मक संघर्ष की बात मैंने कही है उसको हमें भारतवर्ष तक सीमित करके नहीं देखना चाहिए। ऐसा करने से हमारी दृष्टि संकुचित हो जाएगी। भारत के भीतर जो विचारात्मक संघर्ष चल रहा है वह एक विश्वव्यापी संघर्ष का अंग है। अतएव उस संघर्ष में हम अकेले नहीं हैं। उस संघर्ष में हमारा भी एक मित्रपक्ष है। हमारे मित्रपक्ष में विदेशी सरकारें भले ही न हों, विदेशी वित्त संस्थान भले ही न हों। हमारा सबसे बड़ा

मित्रपक्ष है मानवमात्र के अन्तर में विद्यमान एक अविजेय और अजर-अमर आत्मतत्व और उस आत्मतत्त्व का गहन गम्भीर स्वभाव। पाश्चात्य जगत में मानववाद, बुद्धिवाद तथा विश्ववाद की एक लहर चल रही है। वह लहर हमारा सबसे सबल मित्रपक्ष है। आज के पाश्चात्य जगत में ईसाइयत मृतप्राय है। वहाँ के लोग ईसाई मिशनों को जो धन देते हैं सो यह समझकर देते हैं कि मिशनरी लोग भारत में समाज सेवा कर रहे हैं। यह उनकी मूल धारणा है। यदि हम पाश्चात्य के लोगों को यह सूचना दें कि मिशनरी लोग किस प्रकार उन के द्वारा दिए गए धन का दुरूपयोग हिन्दू समाज तथा संस्कृति का उच्छेद करने के लिए कर रहे हैं, तो उनके बीच हमको अनेक मित्र मिलेंगे।

इस्लाम के दुर्ग को भेदना कठिन काम है। कारण, इस्लाम अभी भी मतान्धता की कालकोठरी में पड़ा हुआ है। सारे मुसलमान देश एक गहन अन्धकार में डूबे हुए हैं। हम लोग सशरीर इन देशों के भीतर जाकर अपनी बात नहीं कह सकते। ईसाइयत का प्रसार जिन देशों में है, उन देशों में हम सशरीर जा सकते हैं। वहाँ जाकर हम अपनी बात कह सकते हैं, वहाँ के लोगों को अपनी व्यथा समझा सकते हैं, उन लोगों के साथ चर्चा चला सकते हैं। उनके दिलो-दिमाग खुल चुके हैं। किन्तु इस्लाम का दिमाग बन्द है। उसको खोलना भी आसान काम नहीं।

मैंने इस्लाम के विषय में इस समस्या का समाधान श्री रामस्वरूप से पूछा। उनका कहना है कि सूक्ष्म होने के कारण विचार सब प्राचीरों को भेद सकते हैं। यह सच है कि मुसलमान देशों के भीतर सशरीर जाकर हम

वहाँ के लोगों को मानववाद, बुद्धिवाद तथा विश्ववाद का संदेश नहीं सुना सकते। किन्तु उन देशों के बाहर रहकर भी हम वहाँ के लोगों को यह सन्देश तो सुना ही सकते हैं कि वे लोग इस्लाम की कालकोठरी से बाहर निकलकर विचार-स्वातन्त्रय के वातावरण में विचरण करें। हम उन लोगों को प्रकृत अध्यात्म के उस आलोक में विचरने के लिए आमन्त्रित तो कर ही सकते हैं जिसका विस्तार सनातन धर्म के द्वारा हुआ है। मुसलमान देश आज एक संकट का सामना कर रहे हैं। उन देशों के बहुत से छात्र पाश्चात्य देशों के शिक्षालयों में पढ़ने जाते हैं, भारत के शिक्षालयों में पढ़ने आते हैं। पढ़ाई पूरी करने के बाद वे छात्र अपने देशों में वापिस जाना नहीं चाहते। उनके अपने देशों में व्याप्त वातावरण में उनका दम घुटता है। वे छात्र हमारा मित्रपक्ष बन सकते हैं।

इसलिए हमें भारतवर्ष में चल रहे विचारात्मक संघर्ष को इस देश की सीमाओं में बाँधकर नहीं देखना चाहिए। यह एक विश्वव्यापी संघर्ष है। इस देश में जो ईसाइयत है उसका मित्रपक्ष देश के बाहर भी है। उसी प्रकार इस्लाम तथा कम्यूनिज्म के मित्रपक्ष भी देश के बाहर हैं। किन्तु हमारा भी एक मित्रपक्ष है जो सारे संसार में फैला हुआ है। हमारे मित्रपक्ष के पास राजसत्ता भले ही न हो, सैन्यशक्ति भले ही न हो, जो कि विपक्षी मतवादों के मित्रपक्षों के पास पाई जाती है। किन्तु हमारा मित्रपक्ष मानवमात्र की अंतरात्मा है। अतएव हमारा मित्रपक्ष भी विश्वव्यापी है। यह बात हमें भुलानी नहीं चाहिए। विचारात्मक संघर्ष के क्षेत्र में उतरते समय हमको उस अन्तरात्मा का आश्रय लेना चाहिए, उसकी सहायता लेनी चाहिए। तब हमारी जीत होने से कोई संशय नहीं रह जाएगा।

आप लोगों ने मेरे वक्तव्य को धैर्यपूर्वक सुना और मुझे इतना समय दिया, इसके लिए मैं आप सबका आभारी हूँ।